आदिवासी साहित्यकारों के गद्य साहित्य में जनतांत्रिक मूल्यों की अभिव्यक्ति

नन्हकू प्रसाद यादव,

शोध छात्र–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,

डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ,उ.प्र.

शोध सारांश

बीसवीं सदी विभिन्न कामगारों,महिलाओं, अश्वेतजनों, अप्रवासियों की जागृति की गवाह रही है। आदिवासी समाज के ऐतिहासिक परिदृश्य को देखा जाए तो इनका उल्लेख वेदों में मिलता है। वेदों में ही आर्यों के आगमन के साथ अनार्यों का भी उल्लेख मिलता है मूलतः अनार्य ही आदिवासी हैं।आर्यों एवं अनार्यों के संग्राम से आदिवासी समाज को बहुत ही क्षति हुई। आर्यों ने अनार्यों को युद्ध में पराजित कर जंगलों व दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में रहने को मजबूर कर दिया। आदिवासियों के अतीत पर गौर करते हुए विद्वान लिखते हैं कि ‘‘हमारे देश के सन्दर्भ में जब आदिवासियों के अतीत व वर्तमान पर गौर किया जाय, तो सुदूर में आर्य अनार्य संग्राम का उल्लेख मिलता है। इस संग्राम के बाद आदिवासियों ने अपनी पहचान कीरक्षा करते हुए, जंगली पर्वतों पर प्रकृति की शरण में जीते रहने की शैली को अपनाए रखा, व मानवता के मूलभूत सरोकारों को तथाकथित मुख्य समाज की सभ्यता से प्रदूषित नहीं होने दिया। आदिवासी समूहों ने प्रकृति के दुर्गम क्षेत्रों में रहकर भी अपनी समृद्ध संस्कृति को संजोए रखा। आदिवासी समाज तथाकथित समाज से दूर जंगलों एंव पहाड़ों पर निवास करता था, जिससे अक्षर ज्ञान से वंचित रहा। इसके बाद भी अपने समाज के मानवीय मूल्यों को अपनी वाचिक परम्परा के माध्यम से संरक्षित करता रहा। वाचिक परम्परा के माध्यम से ही वनवासी समाज की समृद्ध विरासत को जाना जा सकता। समाज के रीति–रिवाजों, परम्पराओं, मानवीय मूल्यों, रुढ़ियों को साहित्य के माध्यम से बड़े समूह तक पहुँचाया जाता है।

बीज शब्द– *आदिवासी साहित्य एवं साहित्यकार ,गद्य साहित्य ,जनतांत्रिक मूल्य,लिखित साहित्य*

किसी भी समाज की उन्नति के लिए उस समाज का लिखित साहित्य होना आवश्यक है। लिखित परम्परा से उस समाज की प्रथाएं, मूल्य संस्कृति एवं रूढियाँ व्यापक समाज तक पहुँचती हैं। साहित्यकार भी अपने समाज की व्यवहारिक स्थिति को साहित्य के माध्यम से ही व्यक्त करता है। आदिवासी समाज शिक्षित नहीं होने के कारण तथाकथित समाज से दशकों तक दूर रहा। मौखिक परम्परा होने के बाद भी मुख्य धारा की तरह विकसित नहीं हो सका। इसीलिए साहित्य को समाज का वास्तविक आइना माना जाता है। वर्तमान में आदिवासी समाज भी साहित्य की दृष्टि से विकसित हो रहा है।

हिन्दी गद्य के व्यापक स्वरूप कें विषय में कहा जाता है कि चेतना अनुभूति की सघनता तथा चिन्तन की गहनता में समन्वित आधार पर स्वरूप ग्रहण करती है। अनुभूति का सम्बन्ध हदय की संवेदनशीलता से है और चिन्तन वस्तु तत्व के स्थिति बोध के लिए उठने वाली शंकाओं, जिज्ञासाओं तथा प्रश्नों के बौद्धिक समाधान का दूसरा नाम है।‘‘[1]

हमारे देश में साहित्य में जो भी लेखन हो रहा हैं उसमें आधुनिकतावाद, उत्तर आधुनिकता, जनजातीय विमर्श, महिला विमर्श का प्रमुख स्थान है। वर्तमान में हाशिए के अन्य विमर्शो का भी प्रचलन बढ़ा है। इनमें किन्नर विमर्श एवं दिव्यांग विमर्श का महत्वपूर्ण स्थान है।ऐसा समाज जो मुख्य धारा के समाज से दूर दुर्गम, बीहड़ जंगलों में अपनी समृद्ध सभ्यता एवं संस्कृति के साथ गुजर–बसर कर रहा था। इस समाज की हमारे इतिहासकारों ने जानबूझकर उपेक्षा की। रामायण एवं महाभारत में किंचित पात्रों के रूप में कहीं–कहीं स्थान दिया गया है। वहाँ पर भी उन्हें उपेक्षित ही रखा गया है। महाभारत में एकलव्य का नाम सुनते हैं जो एक बहादुर भील राजकुमार था, वहाँ पर भी द्रोणाचार्य की ही महिमा का वर्णन किया गया है।

साहित्य की परिभाषा को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल है उनके मतानुसार 'साहित्य के अर्न्तगत वह सारा वाड़्मय लिया जाता है जिसमें अर्थ बोध के अतिरिक्त भावोन्मेष अथवा चमत्कार पूर्ण अनुरंजन हो तथा जिसमें ऐसे बाड़्मय की विचारात्मक साहित्य या व्याख्या हो।''[2]

वह समय की धारा के साथ अपनी संस्कृति को लेकर आगे बढ रहा है। वह अपनी समस्याओं को लेकर आगे बढ़ रहे हैं। उनकी समस्याएँ एवं उनकी सांस्कृतिक समृद्धि उनके लोकगीतों, लोककथाओं, लोकनाटकों के द्वारा अभिव्यक्त पा रहे हैं, जो उनकी समृद्ध वाचिक परम्परा में विद्यमान है।

आदिवासी समूह वर्तमान विकास नीतियों से अपनी जमीन व अस्मिता से ही बेदखल हो गये। लेखक जन जातीय समूहों पर विकास नीतियों के प्रभाव के विषय में लेखक लिखता है कि ''अपनी जमीनों, जंगलो, संसाधनों व गाँवों से ही बेदखल नहीं हुए बल्कि उनके मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन शैलियों भाषाओं एवं संस्कृति से भी उनके विस्थापन की प्रक्रिया तेज हुई।''[3] आदिवासी साहित्य का आकलन करने के लिए उसे अलग–अलग भागों में विभाजित करना तर्क संगत होगा। सबसे पहले आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों पर चर्चा करना उचित होगा,

नाटक, निबन्ध, एकांकी, कहानी एवं आत्मकथा विधाओं की तरह उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। उपन्यास मानव जीवन के गहरे एवं संवेदनशील अनुभवों को सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं। आदिवासी समाज जो सताया एवं उपेक्षित है अपने लोगों की पीड़ा, व्यथा, संघर्ष, शोषण के विविध रूप एवं अपनी समृद्ध संस्कृति को उपन्यास विधा में अभिव्यक्ति दे रहा है। उपन्यास विधा में मानव जीवन के गहरे अनुभव एवं उनके जीवन की जटिलताओं को बहुत ही गहराई एवं यथार्थ के साथ चित्रित किया जाता है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र ने उपन्यास के विषय में लिखा है कि ''मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मानता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।''[4]

हाशिए के विमर्शों दलित, स्त्री एवं आदिवासी इन समुदायों की वास्तविक अनुभूतियों को गद्य लेखन में प्रमुखता से देखा जा सकता है। शायद इसीलिए उपन्यास विधा इन विमर्शों के केन्द्र में है। जब हम आदिवासी जीवन का चित्रण कहानी उपन्यास एवं आत्मकथा में देखते हैं। अभी तक आदिवासी भाषाओं में गद्य लेखन पर कम ही कार्य हुआ है। हिन्दी भाषी क्षेत्र में जनजातीय समूह की बड़ी आबादी रहती है। केवल पूर्वोतर, पश्चिमी बंगाल एवं आन्ध्र प्रदेश ही गैर हिन्दी भाषी राज्य हैं।

हिन्दी भाषी क्षेत्र के हिन्दी कवियों ने आदिवासी जीवन को आदिवासी उपन्यासों में किस तरह अभिव्यक्ति किया है,? और यह अभिव्यक्ति यथार्थ के कितने निकट है। यह शोध

का विषय है, जिसे हमने आदिवासी उपन्यासों में तलाश करने की कोशिश की है।

भारतीय ग्रामीण परिवेश के विषय में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र ने अपने कथा साहित्य में बहुत लिखा है। उनका कथा साहित्य ग्रामीण परिवेश का जीता–जागता उदाहरण है। ग्रामीण परिवेश के चित्रण की परम्परा भी प्रेमचन्द्र से ही मानी जा सकती है। आदिवासी समाज के विभिन्न पहलुओं की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध समाज शास्त्री टालकोर्ट पारसंस ने कहा "प्रत्येक स्वभाव के साथ एक विशिष्ट प्रकार के व्यवहार की आशा की जाती है, प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में उसके व्यवहार का एक प्रतिमान निर्धारित होता है। सामान्यतः व्यक्ति का व्यवहार किसी प्रतिमान के अनुरूप होता है। इस प्रकार निर्धारित प्रतिमान के अनुरूप व्यवहार करने को ही व्यवस्था कहा जाता है। यदि व्यक्ति अपेक्षित व्यवहार के विरूद्ध क्रिया करता है तो उसका व्यक्तित्व अव्यवस्थिति माना जायेगा।"[5]

समय के साथ अपने को ढालकर चलने वाले खुले समाज की बजाय अलग–अलग व परम्परावादी संस्कृति पर जीवन शैली अपनाने वाले आदिवासी समूह बन्द समाज की श्रेणी में आते हैं। ऐसे बन्द समाज की आन्तरिक जटिलताओं को अनुभव करके साहित्य में अभिव्यक्त करना बेहद जटिल होता है। ऐसे समाज के जीवन अनुभव को बड़े समाज के समने लाने के लिए साहित्यकारों को उनके जीवन में प्रवेश करना व अनुभव प्राप्त करना होता है, जो कि भौगोलिक एवं भाषिक संरचनाओं की दृष्टि से बेहद कठिन है।

हिन्दी उपन्यास में जनजातीय जीवन से अनूभूत पहला उपन्यास सम्भवतः देवेन्द्र नाथ सत्यार्थी का लिखा हुआ 'रथ के पहिए' है, जो सन् 1952 ई0 में प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास मध्यप्रदेश में पाये जाने वाले आदिवासी समूह गोड समूह के जीवन पर आधारित है। इस उपन्यास में आदिवासी जनजाति गौंड के जनजीवन की संवेदनशील एवं प्रमाणिक अभिव्यक्ति की गयी है।

समकालीन जनमत (सितम्बर–2003) के संपादकीय में रामजी राय ने लिखा है कि "आदिवासियों के जीवन की दशा को गहराई से देखने पर राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, समानता, सभ्यता, सर्वागीण विकास जैसे शब्दों के अर्थ खोखले लगते हैं। जिसे राष्ट्रभाषा घोषित किया गया। उसी राष्ट्रभाषा हिन्दी में आदिवासियों की जिन्दगी से सम्बन्धित किताबे या साहित्यक रचनाएँ बहुत कम मिलती है।"[6]

'रथ के पहिए' उपन्यास कई दृष्टियों से आदिवासी जीवन का चित्रण करने में महत्वपूर्ण है। अपने पिता की जीवन पद्धति से विद्रोह करके पात्र आनन्द अपने साथियों को लेकर आदिवासी बहुल गाँव करंजिया पहुँचता है, और वहाँ वह आदिवासियों के रीति–रिवाज, परम्परा एवं रहन–सहन से प्रभावित होता है। आनन्द आदिवासी जीवन शैली से इतना प्रभावित होता है कि वह उनके बीच ही अपना जीवन व्यतीत करने लगता है। वहाँ पर रहकर वह विवेकी सभ्य एवं शील आनन्द आदिवासियों के उत्कर्ष के लिए एक 'कला भारती' नामक आश्रम खोलता है। वह आदिवासियों की जीवन शैली पर मन्त्र मुग्ध होकर कहता है कि "जिन्दगी भर मुर्दों के टीले की खुदाई करते रहने की बजाय उन जिन्दा लोगों के बीच रहना कहीं ज्यादा दिलचस्प है, जो आज हमारे बीच मौजूद तो हैं, लेकिन हजारों साल पहले की सभ्यता में रह रहे हैं।"[7]

ऐतिहासिक विषयों पर अपनी लेखनी चलाने वाले वृन्दावन लाल वर्मा ने हिन्दी उपन्यास साहित्य में आदिवासी गोड़ों की समृद्ध विरासत को रखा है। इस उपन्यास के केन्द्र में उपन्यास की नायिका कचनार की विलक्षण प्रतिभा एवं गौरवपूर्ण साहस है। आदिवासी नारी का अपने सम्मान के लिए किया गया शौर्य पूर्ण संघर्ष

उपन्यास को महत्वपूर्ण बना देता है। नारी अस्मिता की सशक्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत उपन्यास में की गयी है। साथ ही साथ गोड़ों के रहन–सहन एवं रीति–रिवाजों को भी प्रस्तुत किया गया है। वर्मा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में ऐतिहासिक घटना क्रम के आधार पर एक सच्ची घटना का आधार लिया है, साथ ही कचनार एवं दिलीप सिंह के आदर्श प्रणय का वर्णन है। सारी कथा के केन्द्र में गोड़ स्त्री कचनार का चित्रण है। कचनार के संघर्ष के विषय में डॉ0 विजयवाघ लिखते हैं कि ''एक साधारण आदिवासी गोंड नारी कचनार ने अपने सतत् संघर्षशील एवं व्यथाजनित वातावरण में जो दृढ़ता, स्वच्छता एवं वैयक्तिक महत्त्वा का परिचय दिया है और दुर्व्यसनग्रस्त गुसाइयों के मध्य गुसाई बनकर अपने सतीत्व की रक्षा की है। ये सभी बातें नारी जाति की विलक्षण शक्ति और अपूर्व साहस की परिचायक है।''[8]

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की परम्परा फणीश्वनाथ रेणु ने शुरू की। मैला आंचल आंचलिक उपन्यासों की परम्परा में मील का पत्थर है। प्रस्तुत उपन्यास में जमीदारों, सरदार, अमीर, उमराव लोगों द्वारा गरीब मजबूर लाचार संथालों पर किये गये अन्याय एवं शोषण का चित्रण किया गया है। साहसी संथालों एवं जमीदारों के बीच हुए संघर्ष का भी चित्रण किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में किसी भी पात्र को केन्द्र में नहीं रखा गया है। पूरे उपन्यास में कथांचल को रचनात्मकता दी गयी है। पूरा उपन्यास प्राकृतिक अवयवों से भरा है, जिसमें ऊसर–बंजर, बाग, नदी, नाले, ताल–पोखर, टीले, खण्डहार, पशु–पक्षीं सभी का चित्रण किया गया है। पूरा उपन्यास अन्याय शोषण एवं अत्याचार से भरा है, अत्याचार से प्रभावित संथालों के विषय में डॉ0 प्रवीण अनंतराव शिंदे लिखते हैं कि''संथाल आदिवासी प्रतिकूल परिस्थिति में भी डटकर मुकाबला करते हैं। वह परिस्थिति से हार न मानकर संघर्ष करना ही जीवन समझते है।''[9]

मैला आंचल उपन्यास में ग्रामीण जीवन के अनेक अंधविश्वास पौराणिक देवी–देवता, पर्व–त्यौहार, नृत्य–गीत, लोक कथाएं, अनुभूतियों आदि का पूरा संसार जागृत हो उठा है। गाँव के लोगों के लिए प्राकृतिक परिवेश उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना अपनत्व उनके पड़ोसी भाई बन्धु होते हैं। कालीचरण मार्क्सवाद से प्रभावित होकर जमीदारों तक यह संदेश पहुँचाने का प्रयास करते हुए कहता है कि ''जमीन जोतने वालों की है। पूंजीवाद का नाश हो।''[10]

आदिवासी गोड़ जनजाति की समृद्ध सांस्कृतिक परिवेश को आधार बनाकर राजेन्द्र अवस्थी ने महत्वपूर्ण उपन्यास 'सूरज किरण की छाँव' का लेखन किया। उन्होंने मध्यप्रदेश में पाये जाने वाले आदिवासी गोड़ समूह की यर्थाथ स्थिति को वर्णित किया है। इस महत्वपूर्ण उपन्यास का प्रकाशन सन् 1958 ई0 में किया गया। सचमुच यह कहना गलत नहीं होगा कि संसार की संस्कृतियों कास्रोत आदिवासी समाज है। इसीलिए यह भी सही है कि विश्व का सम्पूर्ण जनजातीय वर्ग परम्परा की दृष्टि से सर्वोत्तम है। इन समूहों की समृद्ध संस्कृति की परिधि में लोकवार्ता, लोकनृत्य, वाद्य, संगीत एवं गीत का समावेश होता है।

जिसमें त्यौहारों पर लोक गीत के साथ लोक नृत्य, पौराणिक आख्यानों के छोटे–बड़े प्रसंग के साथ लोक नृत्य, वाद्य, व संगीत कीअनुपम प्रभा का निखार किया जाता है। अवस्थी जी इनके कार्यक्रम को इस प्रकार शब्दांकित करते हैं–''सबसे पहले मैदान के आखिरी कोने में खड़े दलने अपने ढोल जोर–जोर से पीटते रंग–बिरंगे कपड़े और सिर पर जंगली भैंस के सींग पहनें बैंगा आदिवासी निराले थे। कौड़ियों की माला और पैंट में कड़े पहने आदमियों के हाथ में हाथ डाले वह दल आगे बढ़ा, उनके बीच दोलिए भी थे।।''[11]

उपन्यास में सामूहिकता एवं सर्वसम्मति के मूल्यों की पुष्टि होती है, जब उनका मुखिया उनके शैक्षणिक, आर्थिक एवं शारीरिक विकास के लिए योजना बनाकर गोड़ों को बताता है, कि ''यहाँ एक भारी इमारत बनेगी उसमें हजारों रूपये खर्च होगें। इमारत में एक दवाखाना भी होगा। उस दवाखाने में देसी दवाइयाँ मिलेगी। उसके लिए दूर से कोई नामी वैद्य बुलाया जायेगा। यहाँ नाच गाने भी होगें। आपसी विवादों को मिलजुल सुलझाया जायेगा यह इमारत पटेल गाँव के सामूहिक क्रिया कलापों का केन्द्र होगा''[12]

योगेन्द्र नाथ सिन्हा का 'हो' आदिवासी समुदाय पर लिखा गया 'वन लक्ष्मी (1956)' में प्रकाशित उपन्यास सामने आता है। इस उपन्यास में आदिवासी नायिक बुदनी एवं ईसाई धर्मालम्बी जेफरन के प्रेम का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास यह अभिव्यक्त करता है कि बन्द समाज अपनी प्राचीन रूढ़ प्रथाओं एवं परम्पराओं के प्रावधानों के बाहर नही निकल सकते। नायिका बुदनी एवं जेफरन के प्रेम विवाह करने पर 'हो' आदिवासी समूह उसे सपरिवार अपने समाज से निष्कासित कर देता है। कथाकार का कहना है कि 'यो तो यहाँ अपने समाज के भीतर अविवाहित जवान लड़की स्वतंन्त्र होती है। लेकिन जात की दीवार कोई नहीं तोड़ सकता है। लड़की ऐसा कोई काम नहीं कर सकती, जिससे माँ–बाप को समाज से बाहर निकलना पड़े। जात और समाज के लिए ही तो मनुष्य का जीवन है, नहीं तो इस नश्वर शरीर का मोल क्या?''[13]

डॉ0 श्यामा चरण दुबे ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'परम्परा, इतिहास बोध और संस्कृति' में यह टिप्पणी अंकित की है–''हिन्दी उपन्यास की उल्लेखनीय सफलताओं के बावजूद भारत के सामाजिक यथार्थ के आकलन में उसकी सीमा और न्यूनताएं चुभने वाली हैं। भूमिहीन खेतिहर, बंधुआ मजदूरों और श्रमिकों पर जो भी लिखा गया है, वह नाकाफी है और संतोषजनक भी नहीं। आदिवासियों और दरिद्र समाज का दर्द भी अभिव्यक्त नहीं,। अधिकांश हिन्दी उपन्यास अभी भी नगरों और कस्बों के इर्द–गिर्द घूम रहे हैं। बहुत कम लेखक ग्रामीण और दलित जन से तादाम्य स्थापित कर रहे है।''[14]

जनजातीय जीवन के चित्रण की दृष्टि से कथाकार संजीव का विशेष योगदान है वे हमेशा घुमंतू स्वभाव के साहित्यकार रहे। उनका घुमन्तू स्वभाव उन्हें शहरों से दूर दुर्गम, पहाड़ी, जंगलों क्षेत्रों में रहा।वहाँ रहकर उन्होंने आदिवासियों की जीवन शैली का अध्ययन किया। जिसकी परिणति यह हुई कि उनके साहित्य की विषय वस्तु असभ्य, पिछड़े, गन्दे, शोषित, उपेक्षित जीवन का चित्रण बना। प्रस्तुत उपन्यास में संजीव ने खदान मजदूरों और शोषित जनजातियों को प्रस्तुत किया है। उन्होंने खदान मजदूरों के दिलों में जलती बिद्रोह की आग को बहुआयामी दृष्टिकोण से पहचाना है। इस उपन्यास के केन्द्र में नायिका मैना है। वह अपने समुदाय के भूख से बेहाल मजदूरों के विषय में कहती है कि ''धन्न मनाऊँ रेल की कंपनी का कि बछड़ा–बकरा कट जाता है और हमको भोजन खाने को मिल जाता। धन्न मनाऊँ रेलवई पुलिस का हमको सिल तोड़ी कटाता हमरा बहिन बेटी माँ के साथ रंन बाजी करता है, कि हमको दू चार पैसा भेजा जाता धन्न मनाऊँ सरदार निहाल सिंह का कि हमारा चोरी हजम करके टरक से रेलवई कारखाना का कूड़ा हियाँ फेंकता कि हम लोहा पीतल बीन के उनको बेंच के पेट चलाता।''[15]

धार उपन्यास में कोयला खदानों में काम करने वाले मजदूरों की विडम्बना देखिए, कि उपन्यास की नायिका भूख से बेहाल होकर सरकारी खदानों में पति के साथ चोरी करती है। चोरी करते पकड़े जाने पर पुलिस, ठेकेदार उसका मानसिक, आर्थिक एवं लैगिक शोषण करते हैं। उसकी भूख की मजबूरी को कोई नहीं समझता? आदिवासी समूहों की यह कैसी नीयत

है कि दिन–रात कड़ी मेहनत करने के बाद भी दो समय की रोटी नहीं मिलती। उनके बदहाल जीवन में गरीबी, भुखमरी, कच्चा माँस खाना सम्बन्धों की कटुता अभावग्रस्त नारी देह का खुला व्यापार बाल–विवाह, धार्मिक आडंबर आदि यथार्थ रूप में दिखाई देते हैं। यह यथार्थ शोषण, उत्पीड़न की पराकाष्ठा की ही परिणति है।

इस उपन्यास में संजीव ने नायिका मैना में साहस, अन्याय के खिलाफ, सेवाभाव, अपनापन एवं स्वाभिमान जैसी चरित्रगत विशेषताएँ दिखाई है। साथ ही साथ शोषण के विभिन्न रूपों पूंजीवाद बिचौलिया का कुटिल व्यवहार अवैध खनन, माफिया गिरोह के जीवन की दुष्टता को भी प्रकट किया है।

संजीव सृजित उपन्यास 'जंगल जहॉ से शुरू होता है' में पश्चिमी चंपारण की कथा भूमि को वर्णित किया गया है।पश्चिमी चंपारण को मिनी चंबल कहा जाता है। मुख्य रूप से यह उपन्यास डाकू समस्या के इर्द–गिर्द केन्द्रित है, लेकिन वास्तव में जंगल राज के रूप में बदली वर्तमान समाज व्यवस्था के अन्दरूनी पर्तों को उधेड़कर सबके सामने लाने वाला यह महत्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास में डाकू परशुराम, परेमा, वंशी, काली जैसे दुर्दान्त लोग है जो पश्चिमी चम्पांरण को जंगल राज में बदल देते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ स्वार्थी लोग है जो सम्पूर्ण व्यवस्था को ही जंगल राज में परिणत करने में लगे हुए हैं। इस वर्ग में राजनेता, बाहुबली, धनाधीश, पुलिस और संत–महंत है, जो अपने स्वार्थ के लिए पूरी व्यवस्था को डाकुओं से भी बदतर करने में लगे है।

इस उपन्यास में प्रमुख पात्र विसराम श्यामदेव एवं जोगी डाकुओं एवं जमीदार ठेकेदार दोनों ही और से परेशान है, पुलिस उन्हे डाकुओं का मददगार एवं डाकू उन्हें पुलिस का मुखबिर मानते हैं। उनका जीवन चारोंओर से समस्याओं से घिरा हुआ है। उपन्यास का पात्र बिसराम बेटी की मृत्यु पर कहता है कि ''हमारा तो हर तरीका से मौवत लिखल बा, बेटे जमींदार से डाकू से, देवता, से, भूत भवानी से, पुलिस, लेखपाल से, अरे कबन सुख देखल ऐ बेटी ई.ई.ई.।''[16]

इस उपन्यास से संजीव ने थारू जनजाति की तमाम रूढियों एवं प्राचीन जड़ परम्पराओं को कथा का केन्द्र बनाया है। प्रमुख रूप से दो पक्षों राजनीतिक अपराधीकरण और मनुष्य के ही अन्दर पैदा होने वाले जंगल यह दो महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस उपन्यास का पात्र विसराम जो निरापराध है पुलिस उसे खूब पीट–पीट कर अन्त में फर्जी एनकाउन्टर कर देती है एवं उसकी पत्नी के साथ पुलिस थाने में बलात्कार करती है। इस उपन्यास में संजीव ने पुलिस तथा अफसर साही के निर्मम एवं बर्बर चेहरे को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करके अपनी निर्भीकता को प्रदर्शित किया है।

सन् 1959 ई0 में जय प्रकाश भारती द्वारा लिखे गये 'कोहरे में खोये चांदी के पहाड़' में देहरादून के एक अंचल में निवास करने वाली पहाड़ीजनजातीय की यथार्थ अभिव्यक्ति दी गयी है। इस उपन्यास के केन्द्र में आदिवासियों की बहुपति परम्परा को प्रस्तुत किया गया है। इस पहाड़ी जनजाति में अतिथि सत्कार को बहुत ही महत्व दिया जाता है। लेखक की टिप्पणी है कि–अज्ञान एवं अंधविश्वास के कोहरे में चाँदी के पहाड़ ढके हुए हैं, और जब तक गरीबी, अंधविश्वास, अज्ञान, एवं अनैतिक शोषण का अन्त नहीं होगा, तब तक इस अंचल का विकास असंम्भव है।''[17]

राजेन्द्र अवस्थी ने आदिवासी जीवन को चरित्रार्थ करते हुए 'जंगल के फूल' उपन्यास लिखा। उपन्यासकार ने आदिम जीवन को यथार्थ से परे मानकर फूल को प्रतीक मानकर रोमांसीकरण को अधिक महत्व दिया है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध आदिवासी चिन्तक हरिराम मीणा टिप्पणी करते हैं कि''घोटुल का यथार्थ से परे

चित्रण, जिसमें युवक–युवतियों के सम्बन्धों की उन्मुक्ता को भौतिक यथार्थ से परे मस्ती के रूप में चित्रित किया गया है और स्त्री पुरुष के सम्बन्धो की समानता एवं विवाह से पूर्व चयन के अवसर को एक तरह से नजर अंदाज कर दिया गया है।[18] कथाकार रणेन्द्र ने आदिवासी जीवन संघर्ष को लेकर दो महत्वपूर्ण उपन्यास ''ग्लोबल गाँव का देवता एवं गायब होता देश'' लिखे। ग्लोबल गाँव का देवता असुर जनजाति के अनवरत जीवन संघर्ष का एक जीवंत दस्तावेज है। शोषण के अनवरत चक्र इन्द्र से लेकर ग्लोबल गाँव के व्यापारियों तक फैली शोषण प्रक्रिया को पाठकों के सामने रखा है। हाशिए के लोगों का दुख–सुख एवं पीड़ा व्यक्त करती यह महत्वपूर्ण रचना है।

इस उपन्यासके विषय में विद्वानों का मानना है कि ''वस्तुत आदिवासियों –वनवासियों के जीवन का संतप्त सारांश है। शताब्दियों से संस्कृति और सभ्यता की पता नहीं किस छन्नी से छनकर अवशिष्ट के रूप में जीवित रहने वाले असुर समुदाय की पूरी गाथा प्रमाणिकता व संवेदनशीलता के साथ रणेंद्र ने लिखी है।''[19]

इस उपन्यास में प्रकृति प्रेम की अनुपम छटा बिखरी हुई है। प्रकृति के प्रति आदर की भावना दिखाई देती है। इसके साथ ही अपनत्व, सामूहिकता एवं ईश्वर के समाजीकृत स्वरूप का भी चित्रण मिलता है। सामूहिकता की भावना व्यक्त करता एक उदाहरण–खदान की मजूरी एवं पथरीली कृषि भी कम देह तोड़ने वाली नहीं थी। इसी श्रम–रस में डूबते–उमगते, सरहुल हरिअरी, सोहराय, सडसी कूटासी पर्व त्योहारों एवं अखरा में जदुरा में झूमर, करम नाचते, अपने बैगा–पूजा पाहन के साथ सामुदायिक जीवन जीते वे जिन्दगी का घोड़ा दौड़ाते रहते।''[20]

आदिवासी जीवन प्रकृति पर निर्भर है। हजारों वर्षो से जंगलों व पहाड़ो पर रहते–रहते उन्हें प्रकृति देव तुल्य लगती है।प्रकृति के हर संसाधन को वे अपना मानते हैं। यही अपनत्व उन्हें प्रकृति का संरक्षण करने पर बल देता है। प्राकृतिक आपदा में भी असुर जन–जाति कभी भी विचलित नहीं हुई, न ही प्रतिशोध की भावना से प्रकृति को नुकसान पहुँचाया। आदिवासी पाट का प्रकृति का रमणीय चित्र–''दूर–दूर फैले सरगुजा के नन्हे फूल, नन्ही सूरजमुखी अपनी खूबसूरती से माहौल ही बदल देते। धरती पीली चूनर ओढ़ मन्द–मन्द मुस्कराती दुल्हन सी दिखने लगती। कभी–कभी सिंगबोगा–सूरज भगवान की किरणों से खुद ही तिलहन के फूलों का रूप धारण कर लेता। सरगुजा के पीले फूलों की चूनर धरती माइ की मुस्कान –गुनगुनाहट से फिजा झूमती–सी लगती।''[21] आदिवासी असुर जन जाति को हमारे साहित्यकारों ने गलत ढ़ग से इतिहास में प्रस्तुत किया, रामायण एवं महाभारत में राक्षसों की जो कल्पना की गयी है वह सत्य से परे है। राक्षस एक असुर जनजाति थी, जिसे विकृत रूप में दिखाया गया। मुख्य धारा की संस्कृति ने असुरों को इतिहास में कोई स्थान नहीं दिया। उनकी संस्कृति एवं उनके अस्तित्व को ही मिटाने का प्रयास किया गया। मुख्य धारा के लोगों के विषय में रणेन्द्र लिखते है कि ''छाती ठोककर अपने को अत्यन्त सहिष्णु और उदार कहने वाली हिन्दुस्तानी संस्कृति ने असुरों के लिए इतनी भी जगह नहीं छोड़ी थी। वे उनके लिए बस मिथको में शेष थे। कोई साहित्य नहीं कोई इतिहास नहीं, कोई अजाय बघर नहीं। विनाश की कहानियों के कोई कहीं संकेत मात्र भी नहीं।''[22]

असुर जनजाति ने ही आग की खोज की थी। इसी जनजाति ने लौह अयस्क जैसी धातुओं की भी खोज की। असुर जनजाति लोहे को गलाकर उसे विभिन्न वस्तुओं के रूप में आकार देना भी जानती है। यह जनजाति मुख्य धारा की सहिष्णु कहने वाली संस्कृति से किसी भी रूप में कम–न थी। मुख्य धारा के लोगों ने हाशिए के समाज को नीचता दिखाने एवं उसे अपमानित करने के लिए प्राचीन ग्रन्थों में विकृत ढंग से

प्रस्तुत किया। जब कि यह सब काल्पनिक था। प्राचीन ग्रन्थों में राक्षसों को आकार एवं उनकी भावनाओं को भयानक एवं डरावने रूप में दिखाया गया। इस जनजाति को मुख्य धारा की संस्कृति ने हरेक स्तर से मारा। इस सम्बन्ध में रणेन्द्र का कहना है कि ''आग और धातु की खोज करने वाली धातु पिघलाकर उसे आकार देने वाली कारीगर असुर जाति को सभ्यता, संस्कृति, मिथक और मनुष्यता सबने मारा।''[23]

कथाकार रणेन्द्र का दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास गायब होता देश औद्योगीकरण के पश्चात मुंडा आदिवासी समाज के संकट, शोषण लूट, पीड़ा और प्रवंचना का दस्तावेज है। औद्योगीकरण के पश्चात साम्राज्यवादी ताकते किस तरह जल, जंगल–जमीन एवं पहचान को मिटा रही हैं प्रस्तुत उपन्यास इसका जीता–जागता उदाहरण है। इस उपन्यास में वनोंपज की औने–पौने दामों में हो रही लूट एवं उससे होने वाले पर्यावरण का असंन्तुलन को यथार्थ रूप में रखा गया है। प्राकृतिक वातावरण को जनजातियों ने सैकड़ों वर्षों से सुरक्षित रखा। अपनी आवश्यकता के अनुसार ही उसका उपयोग किया, जिसकी वजह से यह औद्योगीकरण से पहले सुरक्षित रहा।

प्रकृति एवं आदिवासियों के सम्बन्ध के विषय में उपन्यास का पात्र वीरेन कहता है कि ''हमारे पूर्वजों ने हजारों साल पहले यहाँ के जंगलों को काट कर खेत बनाये, बस्तियाँ बसाई। क्या यही उनकी गलती थी। वे सबको इज्जत देते थे, उनके पेट छोटे थे, भूख छोटी थी, क्या यह उनकी गलती थी? उन्होंने इस धरती, माँ पेड़–पौधों की इज्जत की। नदी पाखर–झरना, को प्यार किया, दुंगली–पहाड़ को पूजा। क्या यह गलती थी, उन्होंने उतना ही लिया है, जितनी उनकी जरूरत थी। उनकी जरूरतें बहुत कम थी, और वे बहुत खुश थे।''[24]

इस उपन्यास में जमीदारों, राजनेताओं, माफियाओं एवं पुलिस के गठजोड़ की विभिन्न परिस्थितियों को देखा जा सकता है। एक ईमानदार पत्रकार किशन विद्रोही को जनजातीय समाज की समस्याओं व उनके हक दिलाने पर गोली मार दी जाती है। पुलिस एवं राजनेताओं की मिलीभगत से माफिया आदिवासियों का मुँह बन्द कर देते है। किशन–बिद्रोही की हत्या का एक मात्र कारण यह था कि माफिया नियमों को धता बता कर आदिवासियों की जमीन औन–पौने दामों में खरीद रहे थे, पत्रकार उनकी सच्चाई को बुद्धिजीवियों तक पहुँचा रहे थे। किशन बिद्रोही की हत्या होने पर भी पुलिस की मिली भगत से कोई सबूत भी नहीं मिला। उनकी हत्या के विषय में रणेन्द्र लिखते हैं कि ''इस हत्या के पीछे उस शहर का इतिहास छिपा है, जहाँ नोटो से भरी थैलियाँ और ताकत के बल पर आदिवासी टोले गायब किये जाते हैं। उनकी जमीन छीनी जाती रही, उनके गाँव उजाड़े जाते रहे। इस शहर का इतिहास जितना पुराना है, आदिवासी जमीन की लूट का इतिहास।''[25]

गायब होता देश में ईश्वर का समाजीकृत स्वरूप भी मुंडारी प्रार्थना में देखने को मिलता है। इन गीतों में सिंगबोगा को मुण्डा लोग अपना पितामह कहते हैं। उनका सिंगबोगा अदृश्य शक्ति नहीं है वह उनका शुभ चिंतक है। उनके हर सुख–दुख में शामिल होता है। उनका सिंगबोगा इस सम्पूर्ण प्रकृति में समाया हुआ है। वह उनके पूर्वजों का ही एक प्रतीक है, जिसे ईश्वर का समाजीकृत स्वरूप कहा जा सकता है। मुण्डा लोग सिंगबोगा को केवल वनस्पति जगत में ही नहीं मानते बल्कि मरांग बुरू (पहाड़) को भी अपने देवता के पद से नवाजते हैं। सिर मारे नर्सिंग बोंगा को मुण्डा जाति के रक्षक एवं संरक्षक के रूप में माना जाता है। कथाकार रणेन्द्र एक मुंडारी गीत से सिंगबोगा का वर्णन करते हैं।

'''हे सिंगबोगा देवी राजा/ तुमने चेतन अवचेतन सब की रचना की है/ तुम पहली ऊषा हो पहला सूर्योदय/तुम्हारी शुभता शुद्ध दूध की तरह उठती है/श्वेत दही की तरह स्थिर हो जाती है।[26]

'गायब होता देश' उपन्यास के विषय में प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यासकार संजीव लिखते हैं कि ''मुंडाओं के वर्तमान, अतीत और सांस्कृतिक मिथक के प्रस्थान बिन्दु लेमुरिया से लेकर विविध रूपों से हमारा परिचय कराता है। सतत् संघर्षरत बुद्धिजीवी सोमेश्वर मुंडा, नीरज पाहन, सोनमनी दी ही नहीं शक्ति स्वरूपा अनुजा पाहन के द्वारा भी जिनका रंग भी अलग है ढंग भी ढब भी, छवि भी मिथकीय अन्त विरोधों को ध्वस्त करती नारी आदिवासी जीवन दर्शन की रोचक व्याख्या करता है।''[27]

गायब होता देश आदिवासी मुण्डा जनजाति की परम्पराओं मिथकों एवं अंधविश्वासोंको समेटता महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें मुंडाओं की जल–जंगल जमीने की समस्याओं को यथार्थ रूप में पाठकों के आगे रखा है। आदिवासी जीवन शैली पर अपनी लेखनी चलाने वालों में बटरोही का नाम पहाड़ी घाटियों में बसे आदिवासियों से सम्बन्धित समस्याओं को आम जनता के बीच लाने की दृष्टि अहम है। इस उपन्यास की कथा भूमि के केन्द्र में सीरगढ नामक पहाड़ी अंचल है, जो निचली एवं गहरी घाटियों के बीच स्थिति है। यहाँ पर बसने वाले महर ठाकुर आदिवासी जनजाति से सम्बन्धित है। यह जनजाति आधुनिक सभ्यता एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से पूर्णता अनभिज्ञ अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर है।

उपन्यास धर्म के जाल में फँसे आदिवासियों की करुण कहानी है। उपन्यास का प्रारम्भ नायक हरदा युवक के सीरगढ अंचल में आगमन से होता है। वह दस वर्ष की अवस्था में ही वनारस जाकर धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करके वापस आता है। वह गाँप में व्याप्त अंधविश्वासों के विषय में कहता है कि ''गाँव में व्याप्त अज्ञान, अंधविश्वास, रुग्ण परम्पराएँ पंडितों के प्रति अंधी आस्था, ''उनके द्वारा किया जाने वाला शोषण, भूत प्रेत की मान्यताएँ छूआछूत एवं धार्मिक आडम्बर ढोंग हैं, हमें इनका विरोध करना चाहिए।''[28]

प्रस्तुत उपन्यास में नायक हरदा का विरोध गाँव के मुखिया करते हैं, क्योंकि वह नहीं चाहते कि गाँव के लोग विकास करके मुख्य धारा में आये। मुखिया के कहने पर पूरा गाँव हरदा का विरोध करता है। किन्तु हरदा अपने प्रयास में लगा रहता है। वह गाँव के रचनात्मक कार्य करके लोगों को अंधविश्वासों से निकाल कर नई मानसिकता तैयार करने में सफल हो जाता। उसके प्रयास से सम्पूर्ण गाँव की समस्याएँ हल होती है।

श्री प्रकाष मिश्र ने लुशेइयों से सन्बन्धित उपन्यास 'जहाँ बॉस फूलते है' का सृजन किया। उनकी समस्याओं को उपन्यास का केन्द्र बना कर जन एवं सरकार दोनों के दृष्टिकोण को सामने रखकर एक बड़ी माँग को पूरा किया है। डॉ0 महेन्द्र भटनागर ने इस उपन्यास के बारे में लिखा है कि ''प्रसिद्ध उपन्यास ऐतिहासिक न होते हुए भी इतिहास से सम्बद्ध है, तमाम घटनाचक्र इतिहास सम्मत है, उसमें कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं। एक सम्पूर्ण जनजाति की गाथा है, उसमें मिजो विद्रोह का क्रमिक विवरण है–किसी भी डाक्यू मेन्ट्री फिल्म की तरह।''[29]

इस उपन्यास का प्रमुख तत्त्व है कि सामंती व्यवस्था, जिसके विरूद्ध मिजो आदिवासी अपने शोषण उत्पीड़न के लिए हथियार उठाने से भी नहीं चूकते, इतना ही नहीं यह सामंती शोषकों के प्रतिनिधियों के विरूद्ध संघर्ष में भी पीछे नहीं रहते। यह उपन्यास हिन्दी का पहला उपन्यास है जो पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय जीवन को गहराई से समझने में सार्थक हुआ है। डॉ0 विजय वाघ आदिवासियों की अस्मिता का वर्णन इस

प्रकार करते है। ''आप वहाँ की पहाड़ियों की ऊँचाई, कटानों का तीखापन नदी बहाव आसमान की चमक, भूख से ऐठतें आदमी का रंग, बूटो की आवाज, शिकारी की चालाकी, हवा का छुअन, धूप की गर्मी, अपनी नस–नस में महसूस करेगें और पायेगें, कि इस तरह उन्होंने हिन्दी साहित्य और उसके माध्यम से भारतीय आदिवासी अस्मिता को रेखांकित किया है।''[30]

भगवान दास मोरवाल द्वारा सृजित 'कालापहाड' देश में बढ़ती साम्प्रदायिका पर गहरी संवेदना अभिव्यक्ति की है। इस उपन्यास में यह चित्रित किया गया है कि राजनेता सत्ता एवं सम्पत्ति पाने के लिए जनता में खून खराबा कराने से भी पीछे नहीं हटते। इन नेताओं के कारण आम आदमी साम्प्रदायिता में लिप्त हो जाता है। इस कृत्रि में इस्लाम धर्मी आदिवासी मेव नाम के अल्पसंख्यक हिन्दुओं के शान्ति पूर्वक जीवन यापन करते हैं। कुछ लोग इनके बीच साम्प्रदायिक हिंसा का जहर घोल देते हैं। लेकिन बाद में लोगों को अपनी भूल का अहसास होता है और एक बार शन्ति व सद्भावना के साथ–साथ रहने लगते हैं।

प्रमुख कथाकार मणि मधुकर ने 'पिंजरे में पन्ना'उपन्यास राजस्थान की गोड़िया लुहार (जो खानबदोश) जाति के जीवन मूल्यों का यथार्थ रूप में रखा गया। इन आदिवासियों की अपनी निजी पहचान, मूल्य, परम्परा रीति–रिवाज और इनकी संस्कृति ही इनकी पहचान है। इनका जीवन आधुनिकता से पूर्णता बेखबर है। इस उपन्यास में मुख्यतः तीन कथाओं का वर्णन किया गया है। प्रथम गोड़िया लुहार, रन्याल की नायिका पन्ना एवं नंदेरम्या की लोककथा की कहानियाँ एक दूसरे के समांतर चलती है जिसके विषय में प्रो0 धन प्रमोद किशनराय लिखते हैं कि ''रेगिस्तान का संघर्षमय जीवन, यायावर समाज की समस्याएँ एवं वहाँ के लोगों की लोक संस्कृति को वाणी दी हैं, नारी शोषण की हृदय–विदारक स्थिति एवं नंदेरम्या की कथा से लोककला के उत्सव की गवेषणा का अंकन हुआ है।''[31]

'अल्मा कबूतरी' मैत्रेयी पुण्या का महत्वपूर्ण उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में कबूतरा जनजाति में जन्मी अल्मा के जीवन की संघर्ष गाथा है। इस उपन्यास में आदिवासी मानवीय मूल्यों नारी चेतना, प्रेम का उच्छल रूप एवं अन्याय का प्रतिकार का यथार्थ चित्रण मिलता है। अल्मा कबूतरी उपन्यास की पृष्ठभूमि बुन्देलखण्ड की 'कबूतरा' नामक आदिवासी जाति के जीवन–मूल्यों रहन–सहन एवं संस्कृति का वर्णन किया गया है। लेखिका ने सभ्य समाज एवं कबूतरा समाज दोनों का ही यथार्थ चित्रण किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में अल्मा एवं धीरज के प्रेम का भी मार्मिक वर्णन किया गया है, जिसमें अल्मा एवं धीरज का मिलन आशिंक ही हो पाता है। क्षणिक मिलन के दौरान धीरज अल्मा से कहता है। ''अपमान हुआ, उसी पर मुग्ध होकर यहाँ तक चला आया। अपमान बड़ी ताकत पैदा कर देता है अल्मा''[32]

इस उपन्यास में कबूतरा जाति की नारी की विषम स्थिति को भी केन्द्रित किया गया है। नारी शोषण के विभिन्न आयामों में उत्पीड़ित एवं शोषित है। वह जमीदारों, गाँव वालों, ठाकुरों से पग–पग पर अपमानित होने के लिए मजबूर है। उपन्यास के विषय में डॉ0 रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं, कि ''अल्मा कबूतरी' कबूतरा जाति की कथा मात्र नहीं हैं वह समकालीन राजनीतिकी दिशाहीनता, अपराधीकरण, सत्ता संघर्ष, बेरोजगारी तथा जीवन मूल्यों के घोर पतन की यथार्थ गाथा भी है। सामाजिक जड़ता को तोड़ती और पारम्परिक रूढ़ियों को चुनौती देती हुई अल्मा जैसी दलित नारी की अपराजेयजिजीविषा समकालीन नारी–चेतना को शक्ति और प्रेरणा देने वाली है।''[33]

गैर हिन्दी में उपन्यास लेखन महाश्वेता देवी ने 1975 में बंग्ला भाषा में अरण्येर कानेर बांग्ला नाम उपन्यास प्रकाशित कराया। जिसे सन् 1979 ई0 में हिन्दी में अनूदित किया गया है। महाश्वेता देवी ने जंगल के दावेदार, में मुण्डा जनजातियों के भगवान कहे जाने वाले बिरसा मुण्डा के जीवन को वर्णित किया है। यह उपन्यास बिहार प्रदेश में रहने वाली मुण्डा जनजातीय की परम्पराओं, अनुभूतियों एवं सनातन विश्वासों में छिपी आस्था का चित्रण किया करताहै।

यह उपन्यास प्रकृति को माँ कहने वाले मुण्डा, हो, संथाल, कोल, हूल एवं अन्य आदिम जातियों द्वारा शोषण के विरूद्ध जंगल के उनके अधिकारों को छीन लेने के उद्देश्य से लिखी गयी प्रेरणापद संघर्ष गाता है। उपन्यास की लेखिका भूमिका में लिखती है कि ''उपन्यास की विधा सही ही अपनी आंगिक रीति मानकर चलती है। इस उपन्यास का भी इसीलिए विरसा की मृत्यु से अन्त होता है। किन्तु जीवन–विद्रोह–जो भी प्रचलित और प्रवाहित है–उसकी सचाई किसी काल में किसी भी देश में नेता की मृत्यु से समाप्त नहीं होती। कालांतर में उत्तराधिकार के पथ पर वह बढ़ता रहता है। विद्रोह से जन्म लेती है क्रान्ति। इस उपन्यास के अन्त के बाद भी उपसंहार के संयोजन से यही अभीष्ट है।''[34]

मीणा जनजाति में जन्मे हरिराम मीणा ने अपने उपन्यास धूणीतपे तीर में इतिहास के बहुत बड़े सत्य को तथ्यों द्वारा अपनी सृजनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में आदिवासी इतिहास की ऐसी घटनाओं को तथ्यों एवं प्रमाणों के साथ पेश किया गया है जिन्हें मुख्य धारा ने इतिहास में स्थान नहीं दिया। इस उपन्यास में सन् 1857 ई0 के स्वतन्त्रता संग्राम में आदिवासियों के योगदान को पाठको के समक्ष रखा गया है।

गैर हिन्दी की उक्त कृतियोंमें उपनिवेशवाद, वर्चस्ववाद व सामंतवाद एवं शोषण के विरूद्ध प्रतिरोध संघर्ष के विविध रूप उभरकर सामने आये है। समृद्ध वाचिक विरासत के तत्वों यथा प्रकृति, ऋतु, पर्व एवं त्योहारों की भी अभिव्यक्ति को महत्व मिला है। प्रेम का निश्छल रूप जो कि एक स्वाभाविक पक्ष है कई उपन्यासों में उभर कर आया है।आदिवासियों के रीति–रिवाज, अन्धविश्वास, सीधापन, स्त्री चेतना, धर्मान्तरण एवं अपने व बाहरी व्यक्तियों के प्रति अपनापन को भी इन उपन्यासों में जगह मिली है। श्रम की महत्वा को भी कई उपन्यासों में अभिव्यक्ति मिली है। ईश्वर के समाजीकृत स्वरूप को भी पर्याप्त स्थान मिला। इसके बावजूद बहुत से जनतांत्रिक मूल्यों की प्रत्यक्ष अनुभूति का आना बाकी है।

अभी भी उपन्यासों में प्रकृति एवं मानवीय मूल्यों, निजी सम्पत्ति की आवधारणा का स्वरूप, भाषा, का उपयोग मौखिक परम्परा एवं विकास विस्थापन से जुड़े कई ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे है जिनको उपन्यासों में उतनी जगह नहीं मिली जितनी मिलनी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. तिवारी, डॉ0 रामचन्द्र हिन्दी गद्य का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करणः 2012,पृ0–03
2. डॉ0 अमर नाथ, हिन्दी आलोचन की परिभाषिक शब्दावली राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करणः 2008, पृ0 378
3. गुप्ता रमणिका, आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण:2018, पृ0 07
4. क्षीर सागर राहुल, हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श लेख से, आदिवासी साहित्य विविध आयाम,सं0 –डॉ0 रमेश संभाजी कुरे, संस्करणः 2016, पृ0–19

5. मीणा हरिराम, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत संस्करणः 2012, पृ0—190
6. मीणा हरिराम, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, संस्करणः 2012, पृ0—191
7. संगीता गोपालराव ढगे, हिन्दी के आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास शीषर्क लेख से, आदिवासी साहित्य विविध आयाम, डॉ0 रमेश संभाजी कुरे, संस्करणः 2016, पृ0—96
8. आदिवासी साहित्य विविध आयाम, सं0 डॉ0 रमेश संभाजी कुरे, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करणः 2016, पृ0—85
9. कुरे डॉ0 रमेश संभाजी सं0, आदिवासी साहित्य विविध आयाम,, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण, —2016, पृ0—156
10. तिवारीडॉ0 रामचन्द्र,हिन्दी गद्य साहित्य,, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करणः 2012, पृ0—878
11. डॉ0 रमेश संभाजी, सं0, आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन कानपुर, संस्करणः 2016, पृ0—166
12. कुरे डॉ0 रमेश संभाजी सं0, आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करणः 2016, पृ0—173
13. मीणाहरिराम,आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, संस्करणः 2012, पृ0—192
14. मीणाहरिराम,आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करणः 2012, पृ0—192
15. कुरे डॉ0 रमेश संभाजी सं0,आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन कानपुर, संस्करणः 2016, पृ0—211
16. कुरे डॉ0 रमेश संभाजी सं0, आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करणः 2016, पृ0—247
17. मीणा हरिराम, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत संस्करणः 2012, पृ0—193
18. मीणा हरिराम, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, संस्करणः 2012, पृ0—193
19. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ संस्करणः 2017, पृ0—102
20. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करणः 2017, पृ0—28
21. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करणः 2017, पृ0—102
22. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करणः 2017, पृ0—33
23. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करणः 2017, पृ0—102
24. गायब होता देश, रणेन्द्र, पेगुइन बुक्स, हरियाणा, संस्करणः 2014, पृ0—104
25. गायब होता देश, रणेन्द्र, पेगुइन बुक्स, हरियाणा, संस्करणः 2014, पृ0—320
26. गायब होता देश, रणेन्द्र, पेगुइन बुक्स, हरियाणा, संस्करणः 2014, पृ0—54
27. गायब होता देश, रणेन्द्र, प्राक्कथन—संजीव द्वारा, पेगुइन बुक्स, हरियाणा सं0 2014, पृ0—प्राक्कथन से

28. कुरे रमेश संभाजीसं0, आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर,संस्करणः 2016 पृ0—91
29. मीणा हरिराम, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत संस्करणः 2012, पृ0—195
30. कुरे रमेश संभाजीसं0, आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करणः 2016, पृ0—62
31. कुरे रमेश संभाजीसं0, आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करणः 2016 पृ0—90
32. तिवारी डॉ0 रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करणः 2012, पृ0—279
33. तिवारी डॉ0 रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करणः 2012, पृ0—279
34. देवी महाश्वेता, जंगल के दावेदार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करणः 2016,पृ0—07